

विवेकानन्द के धर्म और मानवतावाद के प्रत्ययों का दार्शनिक विवेचन

सीमा देवी

धर्म शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत की 'धि' नामक धातु से हुई है, जिसका अर्थ है—धारण करना। जो लोक (संसार) को धारण करता है। धर्म वस्तुतः अनुभूति का साक्षात् विषय होता है। विवेकानन्द ने धर्म के स्वरूप के दो पक्ष स्पष्ट किए हैं—आन्तरिक पक्ष और बाह्य पक्ष। उन्होंने आन्तरिक पक्ष को धार्मिक अनुभूति कहा है जो हर व्यक्ति में है। अतः यह धार्मिक अनुभूति सार्वभौम है। विवेकानन्द ने धर्म को मानवता की आत्मा में आधारभूत रूप में बताया है कि जो भीतर है, समस्त जीवन उसी का विकास है। भारतवर्ष में धर्म को सर्वोपरि माना जाता है जो कि राष्ट्र की रीढ़ है व जिस पर राष्ट्र रूपी इमारत खड़ी है। प्रत्येक मनुष्य में उस अनन्त आत्मा का निवास है जो सर्वव्यापी है। इसलिए सभी को ईश्वर समझकर उनकी सेवा करो, क्योंकि इन रोगी, कोढ़ी, पागल, पापी आदि स्वरूपों में विचरते हुए प्रभु की सेवा करके ही हम अपना उद्धार कर सकते हैं। उनके अनुसार ऐसे धर्म की आवश्यकता है जिससे हम मनुष्य बन सकें और यह सब आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करने पर ही सम्भव है, क्योंकि धर्म व आध्यात्मिकता ही ऐसे मुख्य आधार है जिन पर भारतीय जीवन निर्भर रहा है और भविष्य में भी इसे इसी पर निर्भर रहना है।